अभंग - ज्ञानेश्वरी

अध्याय चौदावा

तुझा जयजयकार। गुरुदेवा नित्य। करिसी तूं सत्य। सुखोदय ।।१।।
आत्मबुद्धिरूप। प्रात:काळ होय। श्रीगुरो, तूं सूर्य। उगवतां ।।२।।
सर्व देवांमाजीं। देव तूं महान। विश्रांतीचें स्थान। विश्वालागीं ।।३।।
मी च ब्रह्म ऐसा। सोऽहंभाव जीवा। भोगविसी देवा। श्रीगुरो तूं ।।४।।
तूं चि नाना [१]लोक-। लाटांसी सागर। तुझा जयजयकार। असो देवा ।।५।।
होसी दीन-बंधु। नित्य दया-सिंधु। [२]आत्म-विद्या-वधू-। वल्लभ तूं ।।६।।
प्रभो जयांसी तूं। राहसी लपोन। तयां विश्व-भान। दाखविसी ।।७।।
परी तुझें रूप। होतां चि प्रकट। विश्वा हि सकट। सर्व तूं च ।।८।।
मंत्र-विद्या-बळें। [३]टाकी जादूगार। [३]बांधोनि नजर। आणिकांची ।।९।।
परी तुझी लीला। [४]लोकविलक्षण। [५]आपणा आपण। चोरिसी तूं ।।१०।।
सर्व विश्वासी तूं। एक चि आधार। विश्व हि साचार। होसी तूं च ।।११।।
ऐसें असोनि हि। कोणा तुझें ज्ञान। कोणासी अज्ञान। मायामोह ।।१२।।
स्वभावें तूं ऐसा। होसी जादूगार। तुज नमस्कार। असो देवा ।।१३।।
जणूं तुझ्या योगें। पृथ्वी क्षमाशील। रसाळ तें जळ। तुझ्या ओलें ।।१४।।
तुझ्या तेजें तेज। सूर्यचंद्रादिकां। उजळिती जे का। त्रिलोकासी ।।१५।।
करी हालचाल। वायु सर्वकाळ। तुझें चि तें बळ। जाणूं आम्ही ।।१६।।
तुजमाजीं व्योम। खेळे लपंडाव। सामर्थ्य हें सर्व। तुझें देवा ।।१७।।

---

१ नाना लोकरूपी लाटा ज्याच्या ठिकाणीं भासतात असा. २ आत्मविद्येचा पति. ३ नजरबंदी करतो.
४ अद्भुत; अलौकिक. ५ तू आपण आपल्याला चोरून राहतोस;

अपार मायेसी। जाणतें जें ज्ञान। तयाचे [१] नयन। तूं चि होसी ॥१८॥
असो गुरुराया। तुज वर्णायास। अपार सायास। वेदांसी हि ॥१९॥
जोंवरी दर्शन। नाहीं तुझें झालें। वेद वर्णी भलें। तोंवरी च ॥२०॥
मग तया-आम्हां। दोघांसी हि मौन। घडतां दर्शन। तुझें देवा ॥२१॥
होतां चि प्रलय। सर्व जलमय। थेंबुट्याचा काय। पाड तेथें ॥२२॥
महानद्या त्या हि। ओळखूं न येती। तैसी होय स्थिति। येथें आम्हां ॥२३॥
ना तरी आकाशीं। उगवतां सूर्य। [२] खद्योतसा होय। चंद्र तो हि ॥२४॥
तैसा तुझा देवा। देखोनि महिमा। वेदांसवें आम्हां। मौन पडे ॥२५॥
जेथें द्वैत जाय। सर्वथा लोपोनि। जेथें चारी वाणी। हारपती ॥२६॥
तो तूं परब्रह्म। श्रीगुरु [३] परेश। तुज वर्णायास। वाचा कोठें ॥२७॥
म्हणोनि स्तवन। सांडोनियां आतां। पायीं ठेवूं माथा। हें चि भलें! ॥२८॥
तरी हौसी जैसा। तैशा तुज येथ। वंदीन निवांत। गुरुराया ॥२९॥
व्हावया सफल। ग्रंथ-व्यवहार। धनी सावकार। होईं माझा ॥३०॥
आतां कृपारूप। देवोनियां धन। पोतडी भरोन। बुद्धिरूप ॥३१॥
शुद्ध ज्ञान-काव्य। रचाया रसाळ। द्यावें मज बळ। गुरुराया ॥३२॥
सांगाया गीतार्थ। होईन मी [४] पात्र। तुझें कृपा-छत्र। लाभतां चि ॥३३॥
विवेकाचीं रम्य। भूषणें करोनि। लेववीन कानीं। संतांचिया ॥३४॥
गीतार्थ निधान। काढो माझें मन। घालीं [५] कृपांजन। आपुलें तूं ॥३५॥
सर्व शब्द-सृष्टि-। एका चि वेळेस। बुद्धीच्या डोळ्यांस। दृश्य व्हावी ॥३६॥
ऐसा शुद्ध कृपा-। बिंबाचा प्रकाश। देईं अहर्निश। गुरुराया ॥३७॥
माझी मनोरम। बुद्धिरूप वेली। फळा यावी भली। ज्ञान-काव्यें ॥३८॥
म्हणोनि तूं होईं। वसंत सर्वथा। श्रीगुरो समर्था। दयानिधे ॥३९॥
माझ्या बुद्धिरूप। गंगेसी साचार। यावा महा-पूर। [६] प्रमेयाचा ॥४०॥
ऐसा करीं थोर। कृपेचा वर्षाव। उदारा सदैव। गुरुराया ॥४१॥
सर्व विश्वासी तूं। एक चि आश्रय। होसी गुरुराय। निरंतर ॥४२॥

---

१ डोळे. २ काजव्याप्रमाणे. ३ परावाचेचा स्वामी. ४ योग्य. ५ कृपारूपी अंजन. ६ सिद्धांताचा.

देवदेवा तुझा। प्रसाद-चंद्रमा। स्फूर्तीची पौर्णिमा। करो मज ॥४३॥
[१] उन्मेष-सागर। भरोनि येईल। कृपेनें पहाल। जरी मातें ॥४४॥
शांतरसादिक। नवरसीं मग। उसळेल चांग। काव्यस्फूर्ति ॥४५॥
तंव गुरुराज। संतोषून बोले। कां गा ऐसें केलें। ज्ञानदेवा ॥४६॥
स्तुतीचिया [२] मिषें। मांडिलें त्वां द्वैत। करोनि निमित्त। विनंतीचें ॥४७॥
पुरे व्यर्थ ऐसी। नको बडबड। दाखवीं उघड। ज्ञान आतां ॥४८॥
गीतेचा भावार्थ। सांगोनि [३] गोमटा। शांतवीं उत्कंठा। श्रोतयांची ॥४९॥
हां जी स्वामी ही च। इच्छा होती येथ। आज्ञा द्याल 'ग्रंथ। सांग' ऐसी ॥५०॥
* दूर्वेचा अंकुर। स्वभावें अमर। वरी आला पूर। अमृताचा ॥५१॥
तरी आतां मूळ। गीताशास्त्रपदें। सद्गुरूप्रसादें। विवरीन ॥५२॥
करोनियां ऐसा। चातुर्यें विस्तार। शंका-परिहार। होय जेणें ॥५३॥
श्रोतेयांच्या ठायीं। श्रवणाची प्रीति। चढती वाढती। निपजेल ॥५४॥
ऐसी रसाळता। येवो निरूपणीं। मागणें चरणीं। हें च माझें ॥५५॥
तरी ऐका मागें। त्रयोदशाध्यायीं। बोलिले जें कांहीं। कृष्णदेव ॥५६॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञाच्या। योगें पार्था जाण। होतसे निर्माण। विश्व सारें ॥५७॥
आत्मा गुण-संगें। बनोनि संसारी। प्रकृतीच्या घरीं। राहे जेव्हां ॥५८॥
सुखदुःख-भोग। तयासी तेव्हां च। एऱ्हवीं तो साच। गुणातीत ॥५९॥
तरी घडे कैसा। [४] असंगासी संग। सुखदुःख-भोग। गुणातीता ॥६०॥
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञांत। कोणता संबंध। कैसा गुण-बंध। आत्म्यालागीं ॥६१॥
कैसे किती गुण। गुणातीत कोण। तयाचें लक्षण। काय कैसें ॥६२॥
करावया स्पष्ट। सर्व हा विषय। [५] प्रस्तुत अध्याय। चौदावा हा ॥६३॥
तरी ऐका आतां। काय अभिप्राय। देव कृष्णराय। विश्वेशाचा ॥६४॥
म्हणे अर्जुना हें। आकळावें ज्ञान। करोनि श्रवण। एकचित्तें ॥६५॥
आम्हीं मागें हें चि। नाना युक्तिवाद। करोनि विशद। सांगितलें ॥६६॥
परी अजूनि हि। स्वानुभवें भलें। नाहीं आकळलें। तुजलागीं ॥६७॥

---

१ स्फूर्तीचा समुद्र. २ निमित्ताने. ३ चांगला; मनोहर. ४ कशाशींहि संबंध नसलेल्याला. ५ चालू.
* परिशिष्ट पहा.

श्रीभगवानुवाच-
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

म्हणोनि तें पुन्हां। सांगूं तुजप्रति। 'पर' ऐसें श्रुति। बोले जया ॥६८॥
एऱ्हवीं हें ज्ञान। आपुलें च असे। परी 'पर' ऐसें। वाटे जीवा ॥६९॥
कीं ते [1]भव-स्वर्ग। आवडती फार। म्हणोनि विसर। पडे ह्याचा ॥७०॥
इतर तीं ज्ञानें। तृणासारखीं च। आत्मज्ञान साच। जणूं अग्नि ॥७१॥
म्हणोनि हें ज्ञान। सर्वांपरी श्रेष्ठ। ऐसें माझें मत। धनंजया ॥७२॥
जाणिती जीं ज्ञानें। भव आणि स्वर्ग। यज्ञ-याग चांग। वाखाणिती ॥७३॥
द्वैतभावाशीं च। जयांची ओळख। नेणती आणिक। श्रेष्ठ कांहीं ॥७४॥
आघवीं तीं ज्ञानें। [2]मिथ्या [3]स्वप्नवत्। होतां चि [4]उदित। आत्मज्ञान ॥७५॥
वायु-लहरींतें। टाकितें गिळोन। सर्वथा गगन। जैसें अंतीं ॥७६॥
ना तरी गगनीं। उगवतां [5]अर्क। होती चंद्रादिक। प्रभाहीन ॥७७॥
किंवा जळमय। होतां प्रळयान्तीं। लोपोनियां जाती। नदी-नद ॥७८॥
तैसें आत्मज्ञान। येतां उदयास। पावती लयास। सर्व ज्ञानें ॥७९॥
म्हणोनि हें ज्ञान। पावन उत्तम। जेणें मोक्ष-धाम। हाता येई ॥८०॥
आपुली तों मुक्ति। असे अनादि च। [6]प्रत्ययें हें साच। होय जेणें ॥८१॥
ज्ञानी-जनें हा च। घेवोनि प्रत्यय। माथां दिला पाय। संसाराच्या ॥८२॥
मनानें च मन। सारोनियां मागें। झाले जे निजांगें। शांतिरूप ॥८३॥
असोनियां देही। नाहीं देहभाव। तरी स्वयमेव। ब्रह्म चि ते ॥८४॥
मिळोनि ते जाती। माझ्या स्वरूपीं च। देहादि प्रपंच। ओलांडोनि ॥८५॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥

माझ्या चि पूर्णत्वें। ते हि परिपूर्ण। नित्यपणें जाण। ते हि नित्य ॥८६॥
अनंत आनंद-। स्वरूप साचार। सत्याचा सागर। जैसा मी गा ॥८७॥

---

१ संसार आणि स्वर्ग. २ खोटीं. ३ स्वप्नाप्रमाणे. ४ उगवलेलें. ५ सूर्य. ६ अनुभवानें.

तैसे चि ते पार्था। सर्वथैव पाहीं। मज-तयां नाहीं। भिन्नपण ॥८८॥
जेवढा मी जैसा। धनंजया साच। तेवढे तैसे च। ते हि झाले! ॥८९॥
भंगतां चि घट। [1] घटाकाश जैसें। मिळोनि जातसे। महाकाशीं ॥९०॥
किंवा मूळ ज्योती-। माजीं नाना ज्योति। मिळतां चि होती। एकरूप ॥९१॥
तैसी येरझारा। द्वैताची संपोन। नुरे मीतूंपण। तयांठायीं ॥९२॥
देव आणि भक्त। नामें जरी दोन। परी अर्थ भिन्न। नोहे साच ॥९३॥
म्हणोनि [2] जैं मूळ। सृष्टीची उत्पत्ति। [3] तैं हि तयांप्रति। नाहीं जन्म ॥९४॥
सृष्टीच्या प्रारंभीं। जयां देहाकार। लागे ना साचार। घ्यावयासी ॥९५॥
तयां ज्ञानी भक्तां। मृत्यु कैंचा काय। होईल प्रळय। जिये वेळीं ॥९६॥
जन्मक्षयातीत। म्हणोनि ते साच। पार्थ झाले मीच। येणें ज्ञानें ॥९७॥
आवडीनें देवें। बहु ऐशा रीती। ज्ञानाची महती। वाखाणिली ॥९८॥
तेविं पार्थासी हि। आवडो हें ज्ञान। हेतु हा धरोन। देव बोले ॥९९॥
तंव सर्वांगीं च। अंकुरोनि कान। पार्थ [4] अवधान-। रूप झाला ॥१००॥
आतां सर्वज्ञाचें। ऐसें निरूपण। गगन हि सान। जयापुढें ॥१०१॥
तयाचें हि पार्थ। करी आकलन। व्यापक होवोन। तेवढा च ॥१०२॥
मग प्रेम-भरें। म्हणे भगवंत। प्रज्ञेचा तूं कान्त। होसी पार्था ॥१०३॥
जेवढें गहन। आमुचें व्याख्यान। तुझें अवधान। तेवढें गा ॥१०४॥
म्हणोनि आमुची। वक्तृत्वता भली। आज [5] उजवली। ऐसें वाटे ॥१०५॥
तरी धनुर्धरा। एक मी असोन। पारध्याकडोन। त्रिगुणाच्या ॥१०६॥
नाना देहपाशीं। गुंतविला जातों। कैसा तें सांगतों। ऐक आतां ॥१०७॥
आणि कोणे परी। कैसा क्षेत्र-योगें। प्रसवतों जगें। तें हि ऐक ॥१०८॥
घडे माझा संग। प्रकृतीशीं जेव्हां। भूतजात तेव्हां। जन्म पावे ॥१०९॥
म्हणोनि तियेसी। क्षेत्र ऐसें नाम। पार्था महद्ब्रह्म। ही च जाण ॥११०॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

---

१ भांड्यातील पोकळी. २ जेव्हां. ३ तेव्हां. ४ लक्ष देणे हेंच रूप असलेला. ५ योग्य स्थळीं पडली.

महत्तत्त्वादिकां। विश्रांतीचें स्थान। होय ती म्हणोन। महद्‌ब्रह्म ॥१११॥
विकारांची वाढ। करी फार ही च। म्हणोनि हि साच। महद्‌ब्रह्म ॥११२॥
अर्जुना अव्यक्त-। वादी जे का कोणी। 'अव्यक्त' म्हणोनि। बोलती ते ॥११३॥
सांख्यमतवादी। 'प्रकृति' म्हणोन। [1]संबोधिती जाण। क्षेत्रासी च ॥११४॥
ह्या चि प्रकृतीस। 'माया' ऐसी [2]संज्ञा। दिली जाय [3]प्राज्ञा। वेदान्तांत ॥११५॥
असो वायां काय। विस्तारें बोलोन। सर्वथा अज्ञान। हें चि पार्था ॥११६॥
आपुलें आपणा। पडे विस्मरण। तें चि रूप जाण। अज्ञानाचें ॥११७॥
जैसें अंधाराचें। दिसे ना स्वरूप। घेवोनियां दीप। पाहूं जातां ॥११८॥
तैसें आत्मरूप। विचारितां निकें। टिके ना लटिकें। अज्ञान हें ॥११९॥
स्थिरावतां होय। ढवळितां जाय। दुग्धीं जैसी साय। दुग्धाची ती ॥१२०॥
जागृति ना स्वप्न। समाधि नाहीं च। गाढ निद्रा ती च। होय जैसी ॥१२१॥
किंवा नभ वांझ। वायुविण रितें। तैसें अज्ञान तें। जाण बापा ॥१२२॥
सांज-वेळीं उभा। खांब कीं माणूस। ओळखावयास। येई ना हें ॥१२३॥
दिसे ना आकार। कोणता हि नीट। आभास अस्पष्ट। दिसे कांहीं ॥१२४॥
तैसें ब्रह्मरूप। सत्यस्वरूपांत। किंवा विपरीत। देखे ना जें ॥१२५॥
दिवस ना रात्र। ती च सांजवेळ। तैसें चि केवळ। अज्ञान हें ॥१२६॥
ब्रह्मस्वरूपाचें। जेथें नाहीं भान। विपरीत ज्ञान। तें हि नाहीं ॥१२७॥
ऐशा दशेलागीं। बोलती अज्ञान। राहे जें वेढोन। चैतन्यातें ॥१२८॥
तया चैतन्यास। 'क्षेत्रज्ञ' हें नांव। अर्जुना स्वभाव। ऐक त्याचा ॥१२९॥
आपुलें स्वरूप। नेणोनि साचार। अज्ञानासी थोर। करावें गा ॥१३०॥
जाण क्षेत्रज्ञाचा। स्वभाव हा ऐसा। तुज गुडाकेशा। सांगितला ॥१३१॥
ऐशापरी क्षेत्र-। क्षेत्रज्ञाचा [4]योग।जाणोनि घे चांग। धनुर्धरा ॥१३२॥
मायेपाशीं ऐसा। ठेवणें संबंध। स्वभाव हा सिद्ध। चैतन्याचा ॥१३३॥
आपुल्या ठायीं च। अज्ञानासारिखें। चैतन्य तें देखे। नाना रूपें ॥१३४॥
जैसा कोणी [5]रंक। होवोनि भ्रमिष्ट। म्हणे मी [6]सम्राट। आलों देखा ॥१३५॥

---

१ नांव देतात. २ नांव. ३ हे बुद्धिमंता (अर्जुना). ४ संबंध. ५ दरिद्री. ६ सार्वभौम राजा.

किंवा जैसा कोणी। होवोनि [1] मूर्च्छित। मानी स्वर्लोकांत। गेलों ऐसें ॥१३६॥
तैसी निज-दृष्टि। स्वरूपावरोन। चळतां [2] दर्शन। मांडे जें जें ॥१३७॥
तया नांव सृष्टि। प्रसवतों मी च। बोलती वायां च। जगीं ऐसें ॥१३८॥
आतां पुन्हां हा चि। सिद्धांत गहन। सांगूं विवरून। स्पष्टपणें ॥१३९॥
परी धनंजया। तत्त्व हें आघवें। करीं स्वानुभवें। आपुलेंसें ॥१४०॥
२९ पुरुष मी पार्था। अविद्या ही पत्नी। अनादि तरुणी। जाण माझी ॥१४१॥
न येती वर्णाया। हिचे कोणा गुण। ऐसी विलक्षण। गृहिणी ही ॥१४२॥
वस्तुतां अस्तित्व। नसोनि कांहीं च। व्याप्ति हिची साच। अमर्याद ॥१४३॥
स्वरूपीं जो जागे। तयासी ही दूर। समीप साचार। निद्रितासी ॥१४४॥
मज स्वतांलागीं। लागतां चि झोंप। होय आपोआप। जागृत ही ॥१४५॥
माझिया चि सत्ता-। संभोगें साचार। राहे गरोदर। गृहिणी ही ॥१४६॥
माया-महद्ब्रह्म-। आपुल्या उदरीं। [3] आठ हि विकारीं। [3] प्राकृतिक ॥१४७॥
जगद्रूप गर्भ। वाढविते कैसा। तें चि गुडाकेशा। ऐक आतां ॥१४८॥
उभयांचा संग। घडतां पहिलें। देख जन्मा आलें। बुद्धि-तत्त्व ॥१४९॥
रजोगुणें बुद्धि। भारली जातां च। जन्म होय साच। मनाचा गा ॥१५०॥
मनाची अर्धांगी। ममता साचार। रची अहंकार-। तत्त्व मग ॥१५१॥
तयाचिया योगें। पंचमहाभूतें। येती [4] व्यक्तत्वातें। धनंजया ॥१५२॥
इंद्रियें विषय। पंचमहाभूतीं। अंतर्भूत होती। स्वभावतां ॥१५३॥
म्हणोनियां महा-। भूतांसमवेत। सर्व होती व्यक्त। तीं हि पार्था ॥१५४॥
अष्ट विकारांचा। होवोनियां क्षोभ। त्रिगुणांचा गर्भ-। पिंड जो का ॥१५५॥
तो हि होतां व्यक्त। प्रवेशे तयांत। जीव वासनेंत। राहिला जो ॥१५६॥
सूक्ष्म वृक्षाकार। धरी बीज-कणी। भेटतां चि पाणी। जैशा रीती ॥१५७॥
तैसी माझ्या संगें। अविद्या ती देख। प्रकटे अनेक। [5] विश्वांकुरीं ॥१५८॥
मग तया गर्भ-। गोलाचा आकार। उमटे साचार। कैसा ऐक ॥१५९॥
अंडज स्वेदज। उद्भिज्ज जारज। अंगें हीं सहज। उमटती ॥१६०॥

---

१ बेशुद्ध. २ दिसूं लागतें. ३ प्रकृतीच्या आठ विकारांनीं. ४ स्पष्टपणाला. ५ विश्वरूपी कोंभांनी.

[१] व्योम-वायु-बळें। गर्भरस वाढे। तेंव्हा रूप चढे। अंडजासी ।।१६१।।
घालोनियां पोटीं। तम आणि रज। [२] तोय आणि तेज। बळावतां ।।१६२।।
निश्चयेंकरोन। होतसे उत्पन्न। अवयव जाण। स्वेदज हा ।।१६३।।
हीन तमो-गुणें। उद्भिज्ज केवळ। पृथ्वी आणि जळ। वाढतां चि ।।१६४।।
व्योम वायु तेज। तोय आणि पृथ्वी। वागती आघवीं। सहकार्यें ।।१६५।।
तेविं तरारती । बुद्धि आणि मन। जाण हीं कारण। जारजातें ।।१६६।।
जारजादि ऐसे। हातपाय चार। अर्जुना साचार। जयाचे गा ।।१६७।।
अष्टधा प्रकृति। हें चि ज्याचें शिर। विशाल [३] उदर। प्रवृत्तीचें ।।१६८।।
निवृत्ति ही पाठ। जयाची गा नीट। नाभी-तटीं आठ। सुर-योनी ।।१६९।।
रमणीय स्वर्ग। हा चि कंठ चांग। होय मध्यभाग। मृत्युलोक ।।१७०।।
पाताळ तें जाण। जयाचें ढुंगण। ऐसें विलक्षण। बाळ एक ।।१७१।।
अविद्यामाउली। प्रसवली देख। बाळसें त्रिलोक। जयाचें गा ।।१७२।।
लक्ष चौऱ्याऐशीं। होती पेरें सांधे। ऐसें बाळ वाढे। प्रतिदिन ।।१७३।।
तया बाळाचिया। नाना अवयवीं। नामाचे [४] लेववी। अलंकार ।।१७४।।
मोह-स्तन-पान। तयासी देवोन। करीते पोषण। नित्य नवें ।।१७५।।
भिन्न भिन्न सृष्टि। हीं च बोटें होती। आंगठ्या शोभती। देहरूपी ।।१७६।।
अविचार-कालीं। दिसे जें सुंदर। ऐसें चराचर-। रूपी बाळ ।।१७७।।
एकुलतें एक। प्रसवोनि भली। कैसी थोरावली। अविद्या ही ।।१७८।।
विष्णु हा मध्यान्ह। ब्रह्मा प्रात:काळ। शिव सायंकाळ। बाळाचा ह्या ।।१७९।।
तिन्ही काळीं खेळ। खेळोनि सर्वथा। दमतां भागतां। बाळक हें ।।१८०।।
महा-प्रळयाच्या। अंथरुणावरी। मग निद्रा करी। शांतपणें ।।१८१।।
पुन्हां कल्पारंभीं । खेळ खेळूं लागे। होवोनियां जागें। भेद-ज्ञानें ।।१८२।।
ऐशापरी मिथ्या। दृष्टीचिया घरीं। कैसें क्रीडा करी। कौतुकानें ।।१८३।।
[५] युग-मालिकांचीं। पाउलें टाकीत। हिंडे फिरे तेथ। बालक हें ।।१८४।।
जयातें संकल्प। आवडे बहुत। खेळगडी होत। अहंकार ।।१८५।।

---

१ आकाश. २ पाणी. ३ पोट. ४ घालतें. ५ कृत, त्रेता, द्वापार, कलि अशा चार युगांच्या चौकड्यांचीं.

परी हें सकळ। लोपतें तत्काळ। अर्जुना निर्मळ। आत्मज्ञानें ॥१८६॥
असो बहु ऐसें। विश्व माया व्याली। तेथे साह्य झाली। माझी [१] सत्ता ॥१८७॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

म्हणोनि मी पिता। महामाया माता। बाळक सर्वथा। विश्व जाण ॥१८८॥
आतां भिन्न भिन्न। शरीरें देखोन। [२] न भंगो तें ज्ञान। एकत्वाचें ॥१८९॥
मन बुध्द्यादिक। आठ हि विकार। एक चि साचार। नाना देहीं ॥१९०॥
नाना अवयव। परी देह एक। विश्व तैसें देख। अभेदत्वें ॥१९१॥
एका चि बीजाच्या। जैशा नाना शाखा। खालीं वरी ज्या का। पसरल्या ॥१९२॥
तैसा जाण माझा। संबंध केवळ। मृत्तिकेचें बाळ। घट जैसा ॥१९३॥
किंवा पार्था जैसें। वस्त्रपण साचें। होय कापसाचें। नातवंड ॥१९४॥
किंवा [३] कल्लोळांची। परंपरा साच। होय [४] अब्धीची च। संतति ती ॥१९५॥
तैसा माझा जाण। विश्वाशीं संबंध। दोहोंमाजीं भेद। नको मानूं ॥१९६॥
वन्हि आणि ज्वाळा। एक चि तीं जैशीं। तैसा मी विश्वाशीं। एकरूप ॥१९७॥
मजपासोनियां। विश्वाची उत्पत्ति। नको ऐसी भ्रांति। धरूं वायां ॥१९८॥
नको मजहून। मानूं विश्व भिन्न। सकळ संपूर्ण। मी च एक! ॥१९९॥
उद्भवतां विश्व। मीच जरी झांकें। तरी कोण फांके। विश्वपणें? ॥२००॥
रत्नाचिया तेजें। काय रत्न लोपे?। भूषणें हारपे। सुवर्णत्व? ॥२०१॥
फांकलें कमळ। कमळत्वा मुके?। अवयवीं झांके। [५] अवयवी? ॥२०२॥
अवयवीचें त्या। अवयव हें च। नव्हे काय साच। रूप सांगें ॥२०३॥
किंवा पक्व दशा। पावतां कणीस। पेरिल्याचा नाश। म्हणूं ये का? ॥२०४॥
म्हणोनि बाजूस। सारोनियां जग। मातें घ्यावें मग, तैसा नोहें ॥२०५॥
विश्वा हि सकट। सर्व कांहीं मी च। निश्चय हा साच। धरीं जीवीं ॥२०६॥
माझ्या कडोनि च। माझें प्रकाशन। होय भिन्न भिन्न। देहांमाजीं ॥२०७॥
तेविं त्रिगुणांनीं। बद्ध झालों मी च। ऐसें वाटे साच। धनंजया ॥२०८॥

---

१ अस्तित्व; आधार. २ निरनिराळें न होवो, एकत्वाचे भान सुटूं नये. ३ लाटांची. ४ समुद्राची.
५ अवयव धारण करणारा.

जैसें स्वप्नामाजीं। आपुलें मरण। आपण कल्पोन। भोगावें गा ॥२०९॥
काविळीनें डोळे। होवोनि पिवळे। देखती सगळें। पिवळें च ॥२१०॥
रवि-प्रकाशें च। दिसे मेघजाल। [1] आदित्य-मंडल। [2] आच्छादी जें ॥२११॥
जरी कोणा भय। वाटे धनंजया। आपुली च छाया। देखोनियां ॥२१२॥
तरी साउली ती। तया [3] भीताहून। होय काय भिन्न। सांगें मज ॥२१३॥
जैसा छायेचा त्या। तो चि प्रकाशक। त्याहून आणिक। नोहे च ती ॥२१४॥
तैसा मी अनेक। होतसें अर्जुना। प्रकाशोनि नाना। शरीरें हीं ॥२१५॥
नाना देहीं मज। गुणांचें बंधन। करीं प्रकाशन। मी च त्याचें ॥२१६॥
आपुली आपणा। होतां ओळखण। मोक्षासी कारण। बंधन हि ॥२१७॥
परी आत्मज्ञान। नाहीं जया ठायीं। तेथें मोक्ष तो हि। बंध होय ! ॥२१८॥
कोण्या गुणें कैसा। बद्ध माझा मी च। भासतसें साच। ऐक आतां ॥२१९॥
गुण किती कोठें। जाहले निर्माण। नाम आणि वर्ण। काय त्यांचे ॥२२०॥
तेविं धनंजया। काय त्यांचे धर्म। सांगेन तें वर्म। तुज येथें ॥२२१॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा: प्रकृतिसंभवा:।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

सत्त्व रज तम। जाण हे त्रिगुण। प्रकृतिपासोन। निपजती ॥२२२॥
सत्त्व तें उत्तम। रज तें मध्यम। कनिष्ठ तें तम। स्वभावें चि ॥२२३॥
बाल्य तारुण्यादि। तीन हि अवस्था। एका देहीं पार्था। होती जैशा ॥२२४॥
तैसी [4] वृत्ति एक। परी ऐसें वाटे। त्रिगुणत्वें नटे। अंतरीं ती ॥२२५॥
सुवर्णामाझारीं। मिसळतां हीण। तयाचें वजन। वाढे जों जों ॥२२६॥
तों तों हीणकस। होवोनि तें [5] हेम। पावतें परम। [6] निकृष्टता ॥२२७॥
ना तरी जागृति। लोपतां आळसें। दृढावोनि बैसे। निद्रा जैसी ॥२२८॥
तैसी अज्ञानाचा। करोनि स्वीकार। वृत्ति जी बाहेर। निघे पार्था ॥२२९॥
वाढतां वाढतां। होय ती सहज। देख सत्त्व-रज-। तमोरूप ॥२३०॥
आतां दावूं खूण। कैसे हे त्रिगुण। टाकिती बांधोन। आत्म्यालागीं ॥२३१॥

---

१ सूर्यांचे प्रभावर्तुळ. २ झांकतें. ३ भ्यालेल्याहून. ४ मनोव्यापार; भावना; स्वभाव. ५ सोनें. ६ कमी दर्जा.

जीवदशेमाजीं। आत्मा सुनिर्मळ। पार्था अळुमाळ। प्रवेशतां ॥२३२॥
देह चि मी ऐसा। धरी अभिमान। विसर पडोन। आत्मत्वाचा ॥२३३॥
मग [1] यावज्जन्म। देहधर्म जे जे। ते ते सर्व माझे। म्हणूं लागे ॥२३४॥
माशाचिया तोंडीं। पडेना [2] कवळ। तों चि ओढी गळ। [3] धीवर तो ॥२३५॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥६॥

तैसे सुख-ज्ञान-। रूपी पाश ओढी। चतुर पारधी। सत्त्वगुण ॥२३६॥
मग [4] व्याध-पाशीं। सांपडे हरिणी। तैसा सुख-ज्ञानीं। जीव गुंते ॥२३७॥
मग ज्ञान-बळें। करी बडबड। मिरवी उदंड। जाणिवेतें ॥२३८॥
नित्य स्वयंसुख। जें का धनंजया। घालवी तें वायां। आपण चि ॥२३९॥
विद्या आणि मान। लाधतां संतोष। होय जया हर्ष। लाभमात्रें ॥२४०॥
म्हणे धन्य धन्य। मी च समाधानी। मी च सुखी ज्ञानी। ऐसें बोले ॥२४१॥
अष्टसात्त्विकांसी। मी एक आधार। ऐसा अहंकार। मनीं वाहे ॥२४२॥
ऐवढें बंधन। नाहीं पुरे होत। अंगीं भरे भूत। विद्वत्तेचें ॥२४३॥
स्वयें ज्ञानरूप। हें तों विसरला। परी नाहीं त्याला। दुःख त्याचें ॥२४४॥
विषयांच्या ज्ञानें। जाय जो फुगोन। म्हणे श्रेष्ठपण। आलें मज ॥२४५॥
जैसा राजा एक। स्वप्नामाजीं रंक। होवोनियां भीक। मागूं जातां ॥२४६॥
तया लाभतां च। मूठपसा दाणे। इंद्र झालों म्हणे। स्वर्गींचा मी ॥२४७॥
तैसा देहातीत। देहवंत होतां। मानी कृतार्थता। बाह्यज्ञानें ॥२४८॥
विज्ञानीं प्रवीण। [5] यज्ञविद्यावेत्ता। स्वर्गावरी सत्ता। म्हणे माझी ॥२४९॥
नाहीं मजविण। आणिक सज्ञान। ऐसा अभिमान। मनीं वाहे ॥२५०॥
चातुर्य-चंद्रासी। जणूं माझें चित्त। जाहलें सांप्रत। नभाऐसें ॥२५१॥
सुख-ज्ञानरूपी। घालितो वेसण। ऐसा सत्त्वगुण। जीवालागीं ॥२५२॥
मग तयासी तो। नाचवितो तैसें। नाचवावें जैसें। नंदीबैला ॥२५३॥
ह्या चि देहीं जीवा। बांधी रजोगुण। कैसा तें सांगेन। ऐक आतां ॥२५४॥

---

१ जन्मभर. २ घांस. ३ मासे पकडणारा, कोळी. ४ पारध्याच्या जाळ्यांत. ५ यज्ञविद्या जाणणारा.

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।

[१] रंजवी जीवासी। म्हणोनियां ह्यासी। रजोगुण ऐसी। संज्ञा देती।।२५५।।
रजोगुणाठायीं। काम मूर्तिमंत। तारुण्यावस्थेंत। राहे सदा।।२५६।।
जीवीं रजोगुण। प्रवेशतां अल्प। चढे आपोआप। [२] कामोन्माद।।२५७।।
मग तृष्णेचिया। वाऱ्यावरी स्वार। होवोनियां स्वैर। जीव धांवे।।२५८।।
अग्निकुंडामाजीं। ओतोनियां [३] घृत। ज्वाळ धगधगीत। पेटवितां।।२५९।।
मग सुकें ओलें। ऐसी भाषा काय। सर्व कांहीं जाय। जळोनियां।।२६०।।
तैसी बळावतां। विषयांची चाड। दु:ख हि तें गोड। ऐसें वाटे।।२६१।।
इंद्राचें वैभव। उभें ठाके पुढें। तरी तें हि थोडें। वाटूं लागे।।२६२।।
तृष्णा अनिवार। वाढतां चि ऐसी। मेरू हि हातासी। जरी आला।।२६३।।
तरी तयाहून। साहस दारुण। करावें म्हणोन। झटूं लागे।।२६४।।
सांठविलें धन। वेंचिलें आघवें। तरी काय खावें। मग पुढें।।२६५।।
म्हणोनियां व्याप। वाढवी बेफाट। योजना अचाट। आंखोनियां।।२६६।।
स्वर्गलोकीं चांग। घ्यावे नाना भोग। करूं धांवे याग। ह्या चि साठीं।।२६७।।
बांधोनि तलाव। धर्मशाळादिक। धार्मिक याज्ञिक। होऊं पाहे।।२६८।।
काम्यकर्माविण। नेणे आणिकातें। व्रतापाठीं व्रतें। आचरे तो।।२६९।।
ऐसा खटाटोप। वाहे रात्रंदिन। जैसा [४] प्रभंजन। आषाढींचा।।२७०।।
तयापुढें मासा। चंचळ तो कैसा। पुरुष तो ऐसा। रजोगुणी।।२७१।।
[५] कामिनी-कटाक्ष। बोलती चंचल। परी तो तोलेल। कैसा ह्याशीं।।२७२।।
चंचलतेमाजीं। विजेतें हि मागें। टाकोनि हा वेगें। धनंजया।।२७३।।
स्वर्ग-संसाराची। धरोनियां आशा। उडी घेई कैसा। कर्माग्नींत।।२७४।।
देहातीत परी। होतां देहवंत। तृष्णेच्या पाशांत। सांपडोनि।।२७५।।
गळां वाहे ऐसा। व्याप व्यापाराचा। रजोगुणें साचा। जीवात्मा हा।।२७६।।
रजाचें बंधन। देहीं देहवंता। [६] दारुण सर्वथा। जाण ऐसें।।२७७।।

---

१ खुष करतो. २ कामविकाराचें वेड. ३ तूप. ४ वारा. ५ सुंदर स्त्रीचा दृष्टिक्षेप. ६ भयंकर.

आतां तुज सांगूं। तमाचें कौतुक। धनंजया ऐक। एकचित्तें ॥२७८॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

तमोगुणाचें तें। येतां चि [1]पडळ। व्यापार सकळ। मंदावती ॥२७९॥
तमोगुण जाण। मेघ काळाभोर। मोहरूपी घोर। रात्रींतील ॥२८०॥
तमातें जीवन। मिळे अज्ञानाचें। भुलोनियां नाचे। विश्व जेणें ॥२८१॥
अविचार हाच। ह्याचा महा-मंत्र। हें तों [2]मद्य-पात्र। मूढतेचें ॥२८२॥
असो हें जीवासी। मोहिनी घालोन। टाकी जखडोन। चौबाजूंनीं ॥२८३॥
देहातें चि आत्मा। मानिती जे कोणी। तयांसी बंधनीं। घाली ऐसें ॥२८४॥
शरीरीं सर्वत्र। माजतां हें एक। राहे ना आणिक। दुजें तेथें ॥२८५॥
सर्व इंद्रियांसी। येतसे जडत्व। मनासी [3]मूढत्व। तमोगुणें ॥२८६॥
आळसाचा जोर। वाढोनियां फार। येऊं लागे भर। जांभयांसी ॥२८७॥
करूं नये कांहीं। असावें सुस्तींत। आळेपिळे देत। ऐसें वाटे ॥२८८॥
[4]पाचारिल्याविण। बोले 'ओ' म्हणोन। दृष्टि उघडोन। बैसे जरी ॥२८९॥
तरी देखे ना तो। तमोगुणी कांहीं। पडोनियां राही। सुस्तपणें ॥२९०॥
न बोले ना हाले। मुरकुंडी मारून। बैसे रात्रंदिन। धोंडा जैसा ॥२९१॥
कोसळोनि पडो। वरी नभ:प्रांत। किंवा पाताळांत। जावो पृथ्वी ॥२९२॥
परी उठावें हें। येई च ना मनीं। राहतो झोंपोनि। सुस्तपणें ॥२९३॥
ऐसा होतां सुस्त। काय तें उचित। काय अनुचित। हें हि नेणे ॥२९४॥
रहावें लोळत। जेथच्या तेथें च। ऐसी बुद्धि साच। तयाची गा ॥२९५॥
टेकोनियां गालीं। तळहात दोन्ही। मस्तक घालोनि गुडघ्यांत ॥२९६॥
झोंपेमाजीं गुंग। आवडीनें होई। मग स्वर्ग तो हि। तुच्छ लेखी ॥२९७॥
होवोनि चिरायु। झोंपोनि रहावें। घेतसे हा जीवें। छंद एक ॥२९८॥
किंवा वाटे जातां। [5]कलंडे तो जेथें। तया वाटे तेथें। झोंपावें च ॥२९९॥
अमृत आणोनि। मग दिलें कोणीं। तरी धिक्कारोनि। दूर लोटी ॥३००॥

---

१ पडदा; डोळ्यांवर येणारा सारा. २ दारूचें भांडें. मठ्ठपणा. ४ बोलविल्याशिवाय. ५ आडवा पडतो.

आंधळ्यानें जैसें। [1]होवोनि संतप्त । आवेशें धांवत। सुटावें गा ।।३०१।।
तैसा [2]बलात्कारें। करी जरी कांहीं । तरी तें सर्व हि। ज्ञानशून्य ।।३०२।।
कैसें केव्हां काय। कोणाशीं बोलावें। नेणे चि वागावें। कोठें कैसें ।।३०३।।
साध्यासाध्याचा हि। करी ना विचार। तमाचा संचार। होतां अंगीं ।।३०४।।
सर्व हि वणवा। टाकीन पुसोन। पंख झडपोन। एकदां चि ।।३०५।।
ऐसी मनीं हांव। धरोनियां वेडी। पतंग तो उडी। घाली जैसा ।।३०६।।
तमोगुणी तैसा। होवोनियां पिसा। अचाट साहसा। प्रवर्ते गा ।।३०७।।
करूं नये तें तें। करावया धांवे। त्वेषाचिया हांवे। भरोनियां ।।३०८।।
काय सांगूं फार। ऐसा अनिवार। [3]प्रमादीं च भर। असे त्याचा ।।३०९।।
एवं निद्रालस्य-। प्रमाद हे तीन। पाश आवळोन। जोरदार ।।३१०।।
देख तमोगुण। बांधोनियां घेत। उपाधिरहित। शुद्ध जीवा ।।३११।।
काष्ठालागीं अग्नि। व्यापोनियां राही। मग दिसे तो हि। काष्ठाकार ।।३१२।।
किंवा घटामाजीं। राहिलें आकाश। तया घटाकाश। ऐसें नांव ।।३१३।।
नातरी भरलें। सरोवर जळें। चंद्रत्व बिंबलें। तेथें तैसें ।।३१४।।
तैसें स्वयंसिद्ध। आत्मतत्त्व शुद्ध। गुणाभासीं बद्ध। झालें वाटे ।।३१५।।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ।।९।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।१०।।

देहीं कफवात। हरोनियां पित्त। कोपतां संतप्त। देह जैसा ।।३१६।।
किंवा [4]ग्रीष्म आणि। वर्षाकाळ-मास। सारोनी बाजूस। दोहोंतें हि ।।३१७।।
मग [5]हिम-काल। बळावतो जेव्हां। आकाश हि तेव्हां। थंडगार ।।३१८।।
किंवा स्वप्न आणि। जागृती हीं दोन। सर्वथा लोपोन। धनंजया ।।३१९।।
गाढ निद्रा येतां। क्षण एक पाहीं। चितवृत्ति ती हि। जड होय ।।३२०।।
तैसीं रज-तमें। हारपोनि दोन्हीं। सत्त्व बळावोनि। राहे जेव्हां ।।३२१।।

---

१ चिडून; संपवून. २ जबरीनें. ३ चुका करण्यांत, पापे करण्यांत. ४ उन्हाळा. ५ हिवाळा.

तेव्हां पार्था जाण। सुखी मी सज्ञान। ऐसा अभिमान। धरी जीव ॥३२२॥
सत्त्व आणि रज। लोपोनि केवळ। वाढतां चि बळ। तमाचें तें ॥३२३॥
जीव सर्वथैव। राहे ना सावध। करी नानाविध। प्रमादातें ॥३२४॥
तेविं सत्त्व तम। घालोनि पोटांत। होतां बळवंत। रजोगुण ॥३२५॥
कर्माविण कांहीं। चांग दुजें नाहीं। ऐसें मानी देहीं। [1]देहराज ॥३२६॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

लोभ: प्रवृत्तिरारम्भ: कर्मणामशम: स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

आतां रजतमा। जिंकोनियां पार्था। सत्त्व बळावतां। ऐसें होय ॥३२७॥
[2]रिघता वसंत। ज्यापरी अर्जुना। सुगंध मावे ना। पद्म-दलीं ॥३२८॥
तैसी अंतरांत। [3]प्रज्ञा ओतप्रोत। भरोनि फांकत। चोहींकडे ॥३२९॥
सर्वेंद्रियांठायीं। विवेक जागृति। डोळस ते होती। हातपाय ॥३३०॥
राजहंसाचिया। चोंचीचें जें टोंक। निवडितें देख। क्षीर-नीर ॥३३१॥
तेविं दोषादोष-। विवेकीं साचार। इंद्रियें तत्पर। होती त्याचीं ॥३३२॥
होवोनि [4]पाईक। तयाचिया घरीं। स्वयें सेवा करी। संयमन ॥३३३॥
ऐकूं नये तें तें। वगळिती कान। स्वयें चि आपण। धनंजया ॥३३४॥
पाहूं नये जें जें। दृष्टी च तें गाळी। [5]अवाच्य तें टाळी। जीभ चि गा ॥३३५॥
ठाके ना निषिद्ध। इंद्रियांसमोर। जैसा का अंधार। दीपापुढें ॥३३६॥

---

१ जीव; आत्मा. २ सुरू होतांच. ३ ज्ञान; बुद्धि; (प्रतिभा). ४ चाकर. उच्चारूं नये असें.

महानदी जैसी। वर्षाकाळीं भरे। तैसी बुद्धि [१]ठरे। सर्वशास्त्रीं ॥३३७॥
भरोनियां राहे। सर्वत्र आकाशीं। चंद्रप्रभा जैसी। पौर्णिमेस ॥३३८॥
तैसी [२]ज्ञानीं [३]वृत्ति। फांकते सर्वत्र। वासना एकत्र। होवोनियां ॥३३९॥
मनालागीं येई। विषयांचा वीट। [४]पडोनि [४]ओहट। प्रवृत्तीसी ॥३४०॥
जाण पार्था देहीं। सत्त्वगुण वाढे। तयाचें उघडें। लक्षण हें ॥३४१॥
ऐशा स्थितीमाजीं। जरी देह जाय। तरी गति काय। तें हि सांगूं ॥३४२॥
असोनि ऐश्वर्य। अपार औदार्य। आणिक हि धैर्य। वसे अंगीं ॥३४३॥
तरी कां न व्हावी। इहलोकीं कीर्ति। आणि सुख-प्राप्ति। परलोकीं ॥३४४॥
सणासुकाळांत। स्वर्गांतून भला। पाहुणा पातला। आवडता ॥३४५॥
तरी तयाहून। दुजें भलें चांग। धनंजया सांग। काय असे ॥३४६॥
तैसी होय वृद्धि। सत्त्वाची देहान्तीं। तरी तया गति। दुजी कोठें ? ॥३४७॥
शरीर सांडोन। जें का भोग-स्थान। निघे जो आपण। एकाएकीं ॥३४८॥
गुणश्रेष्ठ सत्त्व। घेवोनि सांगातीं। तया लाभे गति। सत्त्वाची च ॥३४९॥
काय सांगूं फार। जया सत्त्वीं आस्था। तया ज्ञानवंतां-। माजीं जन्म ॥३५०॥
राजा राजैश्वर्यें। पर्वतीं पातला। तरी तेथें त्याला। काय उणें ? ॥३५१॥
ना तरी येथींचा। दीप तेथें नेला। तरी का मुकला। दीपत्वासी ॥३५२॥
तैसी जयाची ती। सत्त्व-गुण-शुद्धि। ज्ञानासवें वृद्धि। पावोनियां ॥३५३॥
पांहू लागे बुद्धि। विवेकीं निःशंक। महत्तत्त्वादिक। विचारोनि ॥३५४॥
मग होय तया। विचारासकट। जयाचा शेवट। ब्रह्म-पदीं ॥३५५॥
वेदान्तीं छत्तीस। वर्णिलीं जीं स्पष्ट। त्याहून जें श्रेष्ठ। सदतिसावें ॥३५६॥
नातरी सांख्यांचीं। चोवीस जीं तत्त्वें। त्याहून जें नवें। पंचविसावें ॥३५७॥
किंवा सत्त्वादिक। तीन हि लोपोन। स्वभावें जें पूर्ण। उरे चौथें ॥३५८॥
तें चि परब्रह्म। सर्व सर्वोत्तम। जाहलें [५]सुगम। जयांलागीं ॥३५९॥
तयांचिया कुळीं। तया सत्त्ववंता। लाभे जन्म पार्था। निरुपम ॥३६०॥
ह्या च परी जेव्हां। तम आणि सत्त्व। खचोनि महत्त्व। रजासी ये ॥३६१॥

---

१ स्थिर होते. २ ज्ञानाच्या ठिकाणीं. ३ भावना; स्फूर्ति. ४ कमी होऊन. ५ कळावयास सोपे; सहज.

जेव्हां देहीं रज। होवोनि प्रबळ। घाली धुमाकूळ। स्वकृतीचा ।।३६२।।
तेव्हां जीं जीं होती। लक्षणें प्रकट। अर्जुना तीं नीट। ऐक आतां ।।३६३।।
सर्व पदार्थांसी। वेंटाळोनि जैसी। भोंवते आकाशीं। वाहुटळ ।।३६४।।
तैसे नाना भोग। भोगावया देख। देई मोकळिक। इंद्रियांसी ।।३६५।।
परस्त्रीचा भोग। मानी ना निषिद्ध। रजोगुणें बद्ध। जाहला जो ।।३६६।।
मग शेळीलागीं। चरवावें जैसें। यथेच्छ तो तैसे। भोग भोगी ।।३६७।।
सर्वथा [१] अप्राप्य। तेवढें च उरे। वेंटाळितां सारें। पर द्रव्य ।।३६८।।
ऐसा अनावर। पोटीं लोभ तया। जो का धनंजया। [२] रजोबद्ध ।।३६९।।
पुढें येई तें तें। करावया धांवे। प्रवृत्तीच्या हांवे। भरोनियां ।।३७०।।
वेध लावी ऐसा। बांधावा [३] प्रासाद। किंवा अश्वमेध। करावा गा ।।३७१।।
अचाट हा छंद। तयाचिया मना। जो का रजोगुणा-। धीन झाला ।।३७२।।
बांधावे तलाव। खणाव्या विहिरी। रचाव्या नगरी। मनोरम ।।३७३।।
नाना [४] उपवनें। नाना क्रीडा-स्थानें। नाना महावनें। उभारावीं ।।३७४।।
ह्यापरी अफाट। कर्म हातीं घ्यावें। बांधोनियां जीवें। हीच आस ।।३७५।।
इहपरलोकीं। नाना भोग घ्यावे। पुरे न म्हणावें। भोगितां ते ।।३७६।।
ऐसी अभिलाषा। [५] दुर्भर अपार। सागर हि हार। खाय जेथें ।।३७७।।
आणि अग्नीचें हि। दुर्भरत्व जाण। कवडीसमान। ठरे जेथें ।।३७८।।
आशा तृष्णा घेती। मनापुढें धांव। इच्छा घाली विश्व। पायांतळीं ।।३७९।।
होतां वृद्धिंगत। देहीं रजोगुण। लक्षणें दिसोन। येती ऐसीं ।।३८०।।
ऐशा स्थितीमाजीं। जरी देह जाय। तरी गति काय। तें हि सांगूं ।।३८१।।
आशा तृष्णा इच्छा। घेवोनि हीं सर्व। रजोगुणी जीव। धनंजया ।।३८२।।
मानुषी योनींत। पुन्हां पावे जन्म। करावया कर्म। तैसें चि तें ।।३८३।।
राजमंदिरांत। सुखें बैसो रंक। तरी काय भीक। चुके त्यासी ।।३८४।।
असो समर्थाच्या। वरातीचें घोडें। तरी करबाडें। चुकती ना ।।३८५।।
म्हणोनियां जेथें। विसावा नाहीं च। कर्माचा ऐसा च। व्याप ज्यांचा ।।३८६।।

---

१ न मिळण्यासारखें. २ रजोगुणानें बांधलेला. ३ राजवाडा; बंगला. ४ बागा. ५ तृप्त होण्यास कठीण.

तयांच्या पंक्तीस। जुंपिला तो जाय। फार सांगूं काय। धनुर्धरा ॥३८७॥
रजाचिया डोहीं। ऐसा बुडे तया। कर्मासक्तांचिया। कुळीं जन्म ॥३८८॥
आतां रज सत्त्व। दोन्ही हि गिळोन। पावे तमोगुण। उत्कर्षातें ॥३८९॥
तेव्हां अंतर्बाह्य। लक्षणें जीं देहीं। सांगूं ऐक तीं हि। एकचित्तें ॥३९०॥
अमावास्यारात्रीं। रविचंद्रहीन। जैसें तें गगन। तमोमय ॥३९१॥
तैसें सर्वथैव। तयाचें गा मन। अज्ञानें भरोन। जाय पार्था ॥३९२॥
लोपे सारासार-। विचाराची शक्ति। अल्प हि ना स्फूर्ति। अंतरांत ॥३९३॥
चित्त हि [१] उजाड। मति होय जड। कायसा दगड। तिजपुढें ॥३९४॥
माजे अविवेक। अंतर्बाह्य देहीं। होय स्मृतीची हि। वाताहात ॥३९५॥
मग मूर्खत्वाची। एक देवघेव। बद्ध होतां जीव। तमोगुणें ॥३९६॥
पार्था निरंतर। नाचे अनाचार। इंद्रियांसमोर। तयाचिया ॥३९७॥
तयाचिया चित्ता। आवडे दुष्कर्म। उल्हासें आजन्म। तें च करी ॥३९८॥
घुबडासी जैसें। अंधारीं च दिसे। तैसे तया [२] पिसें। निषिद्धाचें ॥३९९॥
निंद्य कर्मीं ऐसी। उत्कटेच्छा जेथें। धांव घेती तेथें। इंद्रियें हि ॥४००॥
बडबडूं लागे। [३] सन्निपाताविना। झिंगे मद्यपाना-। वांचोनि तो ॥४०१॥
प्रेमाविण वेडा। भुलोनियां जाय। तैसी स्थिति होय। तयाची गा ॥४०२॥
चित्त तरी गेलें। ठिकाणावरोन। परी तें [४] उन्मन। नव्हे [५] साच ॥४०३॥
होवोनि उन्मत्त। ऐसा मोहाधीन। करी रात्रंदिन। अनाचार ॥४०४॥
काय सांगूं फार। लक्षणें हीं जाण। पोषी तमोगुण। निजबळें ॥४०५॥
ऐशा स्थितिमाजी। जरी मृत्यु घडे। तरी सवें जोडे। सर्व हि तें ॥४०६॥
राई राईपण। बीजीं सांठवोन। अंगातें सांडोन। जाय जरी ॥४०७॥
तरी तें चि बीज। अंकुरतां साच। होय राईचें च। झाड पुन्हां ॥४०८॥
नातरी दीपासी। पाजळोनि अग्नि। सर्वथा विझोनि। गेला जरी ॥४०९॥
तरी तया दीपीं। अस्तित्व तयाचें। परिपूर्ण साचें। नसे काय ? ॥४१०॥
म्हणोनि संकल्प। तमोगुणें युक्त। आणि देह-पात। घडे जरी ॥४११॥

---

१ ओसाड; विचारशून्य. २ वेड. ३ वात झाल्याशिवायच. ४ विचारातील अवस्थेंतील. ५ खरोखर.

तरी जीवालागीं। पार्था नि:संदेह। पुन्हां [1] तमोदेह। घेणें पडे ॥४१२॥
बहु बोलूं काय। तमोवृद्धि होय। आणि देह जाय। जरी पार्था ॥४१३॥
तरी पशु-पक्षी-। कृमि-कीटकांचा। नातरी वृक्षाचा। जन्म जीवा ॥४१४॥

कर्मण: सुकृतस्याऽऽहु: सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दु:खमज्ञानं तमस: फलम् ॥१६॥

ह्या चि साठीं जें जें। सत्त्वगुणयुक्त। सर्व तें सुकृत। वेदवाक्यें ॥४१५॥
म्हणोनि त्या पुण्या। सुखज्ञानफळ। सात्त्विक सरळ। [2] लोकोत्तर ॥४१६॥
दिसावया रम्य। [3] कडू [3] वृंदावनें। तैसीं रजोगुणें। होती जीं जीं ॥४१७॥
तीं तीं सर्व कर्मे। दाखवोनि सुख। दु:खरूप देख। फळ देती ॥४१८॥
नातरी निंबोळ्या। दिसाया सुंदर। अंतरीं [4] जहर। परी जैसें ॥४१९॥
तैसीं जीं जीं कर्मे। रजोगुणोत्पन्न। जाण तीं दारुण। दु:खदायी ॥४२०॥
विषांकुरा जैसें। विष हें चि फळ। येतसे केवळ। धनुर्धरा ॥४२१॥
तैसें जें जें कर्म। तमोगुणोत्पन्न। तयाचें अज्ञान। हें चि फळ ॥४२२॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

जैसा [5] दिनमाना। सूर्यनारायण। सत्त्व चि कारण। तैसें ज्ञाना ॥४२३॥
निजस्वरूपाचें। जैसें विस्मरण। होतसे कारण। जीवदशे ॥४२४॥
तैसा रजोगुण। धनंजया जाण। होतसे कारण। लोभालागीं ॥४२५॥
त्याचपरी मोह। प्रमाद अज्ञान। इत्यादि मलिन। दोष-संघ ॥४२६॥
तम हें चि मूळ। तयाचें सर्वथा। जाण। बुद्धिमंता। धनंजया ।॥४२७॥
तळहातीं जैसा। आंवळा घेवोनि। सर्वहि बाजूंनीं। दाखवावा ॥४२८॥
विचाराच्या डोळां। तैसे भिन्न भिन्न। येथें तिन्ही गुण। दाखविले ॥४२९॥
तंव कळों आलें। रजतमोगुण। सर्वथा कारण। पतनासी ॥४३०॥
एक सत्त्वगुण। ज्ञानसुखदाता। जाण पंडु-सुता। सुनिश्चयें ॥४३१॥
म्हणोनियां चौथी। जैसी ज्ञानभक्ति। सर्वत्यागें घेती। ज्ञानीलोक ॥४३२॥

---

१ जडयोनि. २ विशेष; अलौकिक. ३ सुंदर रंगाची विषारी कडू फळें. ४ विष. ५ दिवसाला.

तैसी आमरण। सत्त्वगुणवृत्ति। अंगीं बाणविती। कोणी एक॥४३३॥

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥१८॥

ऐसा [1] सत्त्वोत्कर्ष। बाणे जयां अंगीं। तयां तनु-त्यागीं। स्वर्ग-भोग॥४३४॥
त्या च परी जाण। पार्था रजोगुण। देहीं आमरण। पोषिती जे॥४३५॥
देहान्तीं ते पुन्हां। मानव होवोनि। येती परतोनि। मृत्युलोकीं॥४३६॥
मग सुख-दुःख। कालवोनि भात। एकाचि ताटांत। देहाचिया॥४३७॥
लागे तें चि अन्न। करावें सेवन। चुके ना मरण। जेथें पार्था॥४३८॥
देहीं तमोगुण। होय [2] वर्धमान। आणिक मरण। आलें जरी॥४३९॥
तरी तया जीवा। सुनिश्चयें जाण। दिलें आमंत्रण। दुर्गतीनें॥४४०॥
एवं आत्म्याचिया। सत्तामात्रें देख। कैसे सत्त्वादिक। तिन्ही गुण॥४४१॥
ऊर्ध्व-मध्य-अधो-। गतीसी कारण। तें तुज संपूर्ण। सांगितलें॥४४२॥
आत्मा आत्म्याठायीं। संपूर्णत्वें असे। आत्मपणें वसे। निरंतर॥४४३॥
परी स्व-रूपाचा। पडतां विसर। करोनि स्वीकार। त्रिगुणांचा॥४४४॥
जया गुणांचें जें। विशेष लक्षण। तैसें चि वर्तन। करूं लागे॥४४५॥
निज-राज्यावरी। [3] विपक्षाची स्वारी। आली ऐसें जरी। पाहे स्वप्नीं॥४४६॥
तरी त्या राजाचें। राजत्व न जाय। हारजीत काय। मग कैची॥४४७॥
तैसा उर्ध्वादिक। गुणवृत्तिभेद। परी आत्मा शुद्ध। स्वरूपें चि॥४४८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति।
गणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥१९॥

असो बोलणें हें। आतां [4] अप्रस्तुत। ऐसें नको येथ। मानूं पार्था॥४४९॥
ऐक सावधान। तुज सारभूत। मागील सिद्धान्त। पुन्हां सांगूं॥४५०॥
देहाचें निमित्त। करोनि हे गुण। निपजती जाण। स्वभावें चि॥४५१॥
जैसा काष्ठाकारें। अग्नि अवतरे। किंवा वृक्षाकारें। भूमिरस॥४५२॥
किंवा दह्याचिया। मिषें दूध जैसें। प्रकटे कीं [5] उसें। गोडी जैसी॥४५३॥

---

१ सत्त्वगुणाची वाढ. २ वाढणारा, राहतो. ३ शत्रूची. ४ अनावश्यक; अयोग्य. ५ उसाच्या रूपाने.

तैसे स्थूल सूक्ष्म। देहमिषें जाण। अर्जुना त्रिगुण। प्रकटतां ॥४५४॥
जीवासी बंधन। घडे ऐसें वाटे। परी ऐक मोठें। नवल हें ॥४५५॥
न मोडे जीवाचें। नित्यमुक्तपण। एवढें बंधन। असोनि हि ॥४५६॥
स्वभावानुसार। देहीं व्यवहार। करिती साचार। त्रिगुण हे ॥४५७॥
तरी आत्मयाची। गुणातीत स्थिति। ढळे ना किरीटी। अणुमात्र ॥४५८॥
ऐसें जें सहज। अखंड संपूर्ण। असे मुक्तपण। आत्मयाचें ॥४५९॥
तें चि सांगू आतां। धनंजया तुज। होसी [१] ज्ञानांबुज-। द्विरेफ तूं ॥४६०॥
चैतन्य जें गुणीं। नव्हे गुणाजोगें। ऐसें तुज मागें। सांगितलें ॥४६१॥
तेवीं चि हें येथें। तुज सांगू स्पष्ट। देवोनियां चित्त। ऐक आतां ॥४६२॥
पावतां जागृति। स्वप्न हा आभास। ऐसें प्रत्ययास। येई जैसें ॥४६३॥
तैसें ज्ञान-बोधें। गुणाभासाहून। आत्मतत्त्व भिन्न। ऐसें कळे ॥४६४॥
किंवा उभा कोणी। नदी-तटीं राहे। जळीं पाहताहे। आपणातें ॥४६५॥
तंव तयालागीं। तरंगागणिक। भासती अनेक। प्रतिबिंबें ॥४६६॥
किंवा नट जैसा। घेई सोंगें नाना। परी विसरे ना। आपणासी ॥४६७॥
तैसें चि आपण। वेगळें राहोन। पहावे त्रिगुण। साक्षित्वानें ॥४६८॥
किंवा राहे जैसें। अलिप्त गगन। धरोनि हि तीन। ऋतूंलागीं ॥४६९॥
तैसे तिन्ही गुण। करोनि धारण। राहे तयांहून। वेगळें जें ॥४७०॥
आपल्या चि ठायीं। स्वयंसिद्ध असे। सोऽहंभावें वसे। अंतरांत ॥४७१॥
तेथोनि पाहतां। मग पंडु-सुता। म्हणे मी अकर्ता। साक्षीभूत ॥४७२॥
सर्व हि कर्मासी। गुण चि कारण। राहे उदासीन। जाणोनि हें ॥४७३॥
सत्त्वादिक भेदीं। कर्माचा विस्तार। सर्व तो विकार। गुणांचा च ॥४७४॥
वनामाजीं ऋतु। वसंत तो जैसा। वनश्री-विलासा। [२] हेतु होय ॥४७५॥
तैसा गुणांचिया। विकारा कारण। असोनि मी पूर्ण। उदासीन ॥४७६॥
किंवा तारकांनीं। लोपोनियां जावें। [३] उद्दीपित व्हावें। सूर्यकांतें ॥४७७॥
[४] पद्में विकासावें। [५] तमें हारपावें। होय हें आघवें। सूर्योदयीं ॥४७८॥

---

१ ज्ञानरूपी कमळांतील रस घेणारा भुंगा.　२ कारण.　उत्तेजित; प्रखर.　४ कमळानें.　५ काळोखानें.

परी त्या सर्वांसी । आपण कारण। ऐसें नाहीं भान। सूर्यालागीं ।।४७९।।
साक्षित्वें मी तैसा। देहीं राहें जाण। अकर्ता होवोन। [१] सत्तारूप ।।४८०।।
गुणातें देखें मी। गुण-प्रकाशक। होवोनि पोषक। गुणतेचा ।।४८१।।
गुणांचा निरास। होतां चि साचार। उरे जें का सार। तें हि मी च ।।४८२।।
[२] उर्ध्वपंथें तया। गुणातीतपण। जयालागीं ज्ञान। ऐसें होय ।।४८३।।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।२०।।

ज्ञानाचें माहेर। जाहला म्हणोन। जाणे तो निर्गुण। आणिक जें ।।४८४।।
सरितेसी जैसें। येई सिंधुपण। मिळतां। चि जाण। सागरातें ।।४८५।।
तैसी माझी सत्ता। पावे तो साचार। काय सांगूं फार। धनंजया ।।४८६।।
फांदीवरी राघू। राहिला बैसोन। नलिकेवरोन। उठोनियां ।।४८७।।
तैसी देहाहंता। सर्वथा सांडोन। राहे तो जडोन । सोऽहंब्रह्मीं ।।४८८।।
अज्ञाननिद्रेंत। होता जो घोरत। आंता तो जागृत। स्व-स्वरूपीं ।।४८९।।
भेदबुद्धिरूप। आरिसा गळोन। पडला हातोन। तयाचिया ।।४९०।।
आतां जीवरूप। प्रतिबिंबाभास। दिसे ना तयास। स्वभावें चि ।।४९१।।
शांत होतां वारा। सागराची लाट। जैसी सागरांत। [३] लीन होई ।।४९२।।
तैसें जीवेशांचें। ऐक्य तयाठायीं। [४] लुप्त होतां देहीं। देहाहंता ।।४९३।।
पावतां [५] वर्षान्त ।। जैसें घनजात। आटोनियां जात। अंतराळीं ।।४९४।।
तैसा चि मद्भाव। तयालागीं प्राप्त। होय हातोहात। धनंजया ।।४९५।।
पावतां मद्रूप। असोनि तो देहीं। तयालागीं नाहीं। गुण-बंध ।।४९६।।
भिंगाचिया घरें। दीपाचा प्रकाश। आवरावयास। न ये जैसा ।।४९७।।
किंवा वडवाग्नि। सागरीं असोन। जाय ना विझोन। जळें जैसा ।।४९८।।
तैसें त्याचें ज्ञान। होय ना मलिन। जरी हे त्रिगुण। आले गेले ।।४९९।।
आकाशींचा चंद्र। जळीं जैसा राहे। तैसा देहीं आहे। वास तया ।।५००।।
आपुलाल्या बळें। देहीं हे त्रि-गुण। नाचविती जाण। नाना सोंगें ।।५०१।।

---

१ फक्त आधार. २ उच्च स्थानाच्या (वरच्या) मार्गानें. ३ मिसळून जाते. ४ नाहींशी. ५ पावसाळ्याचा शेवट.

३०

परी तयांकडे। पहावयातें हि। धाडी ना केंव्हा ही। अहंतेतें ॥५०२॥
ऐसा सर्वांपरी। सुस्थिर अंतरीं। जाणे ना शरीरीं। काय घडे ॥५०३॥
आपुल्या अंगींची। टाकोनियां कात। सर्प बिळा आंत। प्रवेशतां ॥५०४॥
त्वचेसी त्या कोण। सांभाळित बैसे। पार्था झालें तैसें। देहाचें त्या ॥५०५॥
[1] पद्मगंधालागीं। येतां पक्वदशा। जाय तो आकाशा। मिळोनियां ॥५०६॥
मग आकाशीं तो। होतां चि विलीन। न ये परतोन। [2] पद्म-कोषीं ॥५०७॥
तैसा तो पुरुष। त्यजोनि आभास। [3] होतां [3] समरस। पर-ब्रह्मीं ॥५०८॥
देहाची तों वार्ता। तयालागीं नाहीं। नेणें चि तो कांहीं। देह-धर्म ॥५०९॥
मग जन्म-जरा-। मृत्यु इत्यादिक। साही गुण देख। देहाचे जे ॥५१०॥
राहिले देहीं च। सर्व हि ते आतां। ब्रह्मतादात्म्यता। पावतां तो ॥५११॥
फुटोनियां घट। अर्जुना साचार। होतां चकाचूर। खापऱ्यांचा ॥५१२॥
मग घटाकाश। तें तों आपोआप। महाकाशरूप। होय जैसें ॥५१३॥
तैसी देहबुद्धि। लोपोनियां जातां। स्वरूपाची होतां। आठवण ॥५१४॥
सर्वत्र सर्वदा। स्वरूपावांचोन। मग दुजें कोण। कोठें आहे ॥५१५॥
ज्ञानसंपन्नता। ऐसी लाभे थोर। असोनि साचार। देहधारी ॥५१६॥
म्हणोनि मी त्यातें। म्हणे गुणातीत। अखंड [4] जागृत। स्व-रूपीं जो ॥५१७॥
ऐकोनि हे बोल। पार्थ सुखावला। मेघें तृप्त केला। मोर जैसा ॥५१८॥

अर्जुन उवाच -
कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

तेणें सुखें पार्थ। देवालागीं पुसे। गुणातीता कैसें। ओळखावें ॥५१९॥
देवा तूं साचार। कृपेचें माहेर। सांगावें सत्वर। मज आतां ॥५२०॥
गुणातीताचें त्या। कैसें आचरण। कैसे तिन्ही गुण। [5] निवारी तो ॥५२१॥
षड्गुणांचा राणा। देव नारायण। ऐकोनि हा प्रश्न। अर्जुनाचा ॥५२२॥
काय तयालागीं। प्रसंगानुसार। देतसे उत्तर। ऐका आतां ॥५२३॥

---

१ कमळाच्या सुवासाला. २ कमळाच्या करंड्यांत. ३ मिळून गेल्यावर. ४ सावध. ५ दूर करतो.

म्हणे हें तों काय। पुससी गा येथें। नवल हें वाटे। तुझें मज ।।५२४।।
गुणातीत ऐसें। नांव चि हें पाहें। खूण दाविताहे। तयाची गा ।।५२५।।
गुणातीत नोहे। कदा [१] गुणाधीन। गुणांचें बंधन। नाहीं तया ।।५२६।।
परी गुणाधीन। किंवा गुणातीत। कैसें हें निभ्रांत। ओळखावें ।।५२७।।
गुणी गुणाहून। वेगळा कीं बद्ध। साच कैसा शोध। घ्यावा ह्याचा ।।५२८।।
जरी हा संदेह। वाहे तुझें मन। तरी सुखें प्रश्न। करीं ऐसा ।।५२९।।
सांगूं आतां तुज। कोण गुणातीत। देवोनियां चित्त। ऐक पार्था ।।५३०।।

श्रीगभवानुवाच-
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ।।२२।।

देहीं रजोगुण। होतां बळजोर। कर्मासी अंकुर। फुटोनियां ।।५३१।।
तया गुणातीता। सर्व हि बाजूंनीं। [२] प्रवृत्ति वेढोनि। घेई जरी ।।५३२।।
तरी मी [३] कर्मठ। ऐसा अहंकार। शिवे ना साचार। तयालागीं ।।५३३।।
आणि जरी खुंटे। कर्माची प्रवृत्ति। तरी नाहीं मती-। लागीं खेद ।।५३४।।
नातरी वाढोन। देहीं सत्त्वगुण। सर्वेंद्रियीं ज्ञान। फांके जरी ।।५३५।।
तरी मी सुविद्य। ऐसा [४] ज्ञान-मद। नाहीं किंवा खेद। तो हि तैसा ।।५३६।।
किंवा तमोगुण। वाढतां अर्जुना। तयासी ग्रासी ना। मोह-भ्रम ।।५३७।।
आणि अज्ञानत्वें। होई ना तो कष्टी। स्वीकारी ना दृष्टि। अज्ञानाची ।।५३८।।
ज्ञानाची [५] लालसा। धरी ना तो कांहीं। प्राप्त होतां देहीं। तमोगुण ।।५३९।।
होतां ज्ञानवंत। वाढोनियां सत्त्व। धरी ना तो हांव। कर्मारंभीं ।।५४०।।
रजोगुणें आला। कर्माशीं संबंध। तरी नाहीं खेद। तयालागीं ।।५४१।।
होवो सायं [६] प्रातर्। ना तरी मध्यान्ह। राहे उदासीन। सूर्य जैसा ।।५४२।।
तैसा गुणातीत। राहे तो अलिप्त। नित्य त्रिगुणांत। वावरोनि ।।५४३।।
काय पर्जन्यें च। सागर तो भरे। ना तरी का उरे। न्यून तेथें ? ।।५४४।।
तैसें सत्त्वगुणें। देहीं प्रवेशावें। तेव्हां चि का व्हावें। ज्ञान तया ? ।।५४५।।

---

१ त्रिगुणांच्या ताब्यात. २ कर्माची ओढ. ३ कर्मात गढलेला. ४ ज्ञानाचा ताठा. ५ हांव. ६ सकाळ.

किंवा हिमालय। होतां [१] हिममय। कांपूं लागे काय। थरथरां ? ॥५४६॥
तैसा गुणातीत। प्रवर्ते कर्मांत। म्हणोनि का होत। कर्मठ तो ? ॥५४७॥
ना तरी [२] प्रखर। झाला [३] उष्णकाळ। तरी का जाळील। अग्निलागीं ? ॥५४८॥
तैसा गुणातीता। मोह प्राप्त होय। तरी मुके काय। ज्ञानासी तो ? ॥५४९॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

धनंजया गुण। आणि गुणकार्य। आघवें चि होय। आपण तो ॥५५०॥
म्हणोनियां वाढो। गुण कोणता हि। तयासी तों नाहीं। सुख-दुःख ॥५५१॥
धर्मशाळेमाजीं। वाटसरू यावा। घ्यावया विसांवा। क्षणभरी ॥५५२॥
तैसा गुणातीत। राहे उदासीन। देहीं परिपूर्ण। स्वानुभवें ॥५५३॥
युद्धभूमि जैसी। नेणे [४] हार-जीत। संग्रामीं तटस्थ। राहोनियां ॥५५४॥
तैसा गुणातीत। गुणातें जिंकीना। हार हि जाईना। गुणांसी तो ॥५५५॥
गुणांकडोनियां। करवीना कांहीं। गुण हि तो नाहीं। जाण ऐसें ॥५५६॥
मृगजळाचिया। उसळोत लाटा। ढळेना सर्वथा। मेरु जैसा ॥५५७॥
तैसे तिन्ही गुण। येवोत जावोत। परी तो अस्वस्थ। नोहे कदा ॥५५८॥
धनंजया आतां। काय बोलूं फार। गिळी ना अंधार। भास्करासी ॥५५९॥
किंवा आकाशासी। लोटीना [५] पवन। भुलवीना स्वप्न। जागृतासी ॥५६०॥
तैसें गुणातीता। जाण पंडु-सुता। त्रि-गुण सर्वथा। बांधितीना ॥५६१॥
प्रेक्षक तो जैसा। बाहुल्यांचा नाच। पाहे दुरोनी च। साक्षित्वानें ॥५६२॥
तैसा गुणातीत। सांपडे ना गुणीं। कौतुकें दुरोनी । पाहे तयां ॥५६३॥
वर्ते सत्कर्मांत। सत्त्वगुण साच। रजोविशेषीं च। रजोगुण ॥५६४॥
आणि तमोगुण। करी व्यवहार। सर्वदा साचार। मोहादींचा ॥५६५॥
परी नभीं सूर्य। जैसा धनुर्धरा। लोक-व्यवहारा। हेतु होय ॥५६६॥
तैसा गुणातीत। जाण पां साचार। कर्मासी आधार। गुणांचिया ॥५६७॥
होतां चंद्रोदय। द्रवे सोमकांत। होय विकसित। [६] कुमुदिनी ॥५६८॥

---

१ बर्फानें भरलेला. २ कडक. ३ उन्हाळा. ४ पराजय व जय. ५ वायु. ६ चंद्रविकासी कमळ.

उचंबळे [१] अब्धि। परी चंद्र उगा। तैसा गुणीं तो गा। गुणातीत ।।५६९।।
वाहो कीं न वाहो। नभीं [२] प्रभंजन। निश्चळ गगन। राहे जैसें ।।५७०।।
तैसा गुणातीत। राहतो निश्चळ। जरी खळबळ। त्रि-गुणांची ।।५७१।।
गुणातीताची ही। ऐसी खूण जाण। आतां आचरण। ऐक त्याचें ।।५७२।।

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकांचन:।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति: ।।२४।।

देखें पंडु-सुता। एक चि तें सूत। वस्त्रीं ओतप्रोत। असे जैसें ।।५७३।।
तैसा गुणातीत। विश्व चराचर। पाहे निरंतर। मद्रूप चि ।।५७४।।
म्हणोनि देणगी। श्रीहरीची जैसी। भक्तां-वैरियांसी। सारखी च ।।५७५।।
तैसें सुखदु:खीं। धनंजया जाण। समान वर्तन। असे त्याचें ।।५७६।।
देह-जळीं मत्स्य। होवोनि रहावें। तेव्हां चि भोगावें। सुख:दुख ।।५७७।।
परी आतां त्याची। [३] देहतादात्म्यता। [४] खुंटली सर्वथा। आत्मभावें ।।५७८।।
सांडोनियां भूस। निवडतां बीज। तैसा तो सहज। स्व-स्वरूपीं ।।५७९।।
भेटतां सिंधूसी। जैसें गंगाजळ। थांबे खळबळ। आपोआप ।।५८०।।
तैसा आत्म-रूपीं। जयासी आराम। तया देहीं सम। सुख-दु:ख ।।५८१।।
असो रात्र किंवा। होवो सूर्योदय। एक चि तें होय। [५] धारणासी ।।५८२।।
तैसा आत्म-रूपीं। राहिला रंगोन। तया द्वंद्वभान। कैचें देहीं ।।५८३।।
असो अंगापाशीं। सर्प कीं उर्वशी। निद्रितासी जैसीं। सारखीं च ।।५८४।।
तैसा निरंतर। स्व-स्वरूपीं राही। तया द्वंद्वें देहीं। एकरूप ।।५८५।।
म्हणोनि तयासी। धोंडा आणि रत्न। सोनें आणि शेण। सारखें च ।।५८६।।
घरीं येवो स्वर्ग। किंवा खावो वाघ। तयाची अभंग। आत्म-बुद्धि ।।५८७।।
जैसा कोणी मृत। होई ना जागृत। नाहीं अंकुरत। [६] दग्ध-बीज ।।५८८।।
तैसी साम्यबुद्धि। तयाची मोडेना। गुणातीतपणा। ज्याच्या ठायीं ।।५८९।।
विधाता म्हणोन। केली स्तुति साच। निंदिला कीं नीच। म्हणोनियां ।।५९०।।
परी स्थैर्यामाजीं। अल्प हि ना उणें। जळूं विझूं नेणे। राख जैसी ।।५९१।।

---

१ समुद्र. २ वायु. ३ देहाशीं एकरूप होऊन राहणे. ४ संपली. ५ खांबाला. ६ भाजलेलें बीं.

तैसी होवो निंदा। किंवा होवो स्तुति। नाहीं तयाप्रति। हर्ष-खेद ॥५९२॥
उजेड अंधार। आदित्यालागोनि। निंदा स्तुति दोन्ही। तैसीं त्यासी ॥५९३॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो:।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीत: स उच्यते ॥२५॥

ईश्वर हा ऐसें। म्हणोनि पूजिला। ना तरी [१] गांजिला। चोराऐसा ॥५९४॥
किंवा हत्ती घोडे। चतुरंग सेना। देवोनियां राणा। केला त्यासी ॥५९५॥
ना तरी समीप। इष्ट मित्र आले। किंवा प्राप्त झाले। दुष्ट वैरी ॥५९६॥
परी गुणातीत। सर्वथा अलिप्त। नेणे दिन-रात। सूर्य जैसा ॥५९७॥
साही ऋतूंमाजीं। जैसें का गगन। राहे उदासीन। सर्वकाळ ॥५९८॥
तैसा गुणातीत। नेणे भेद-भाव। सर्वत्र सदैव। सम पाहे ॥५९९॥
आणिक हि एक। तयाचा आचार। मावळे [२] व्यापार। जणूं सर्व ॥६००॥
नाहीं कर्मारंभ। तयाचिया ठायीं। गंधवार्ता नाहीं। प्रवृत्तीची ॥६०१॥
कर्मफळें जेथें। जळोनियां जाती। होय तो ती मूर्ति। ज्ञानाग्नीची ॥६०२॥
[३] इह-परलोकीं। घ्यावे भोग नाना। ऐसी उपजेना। इच्छा जीवीं ॥६०३॥
प्रारब्धाच्या योगें। होय जें जें प्राप्त। जाय तो सेवीत। सुखें तें चि ॥६०४॥
पाषाणासि जैसा। संतोष ना शीण। तैसा उदासीन। सर्व कर्मीं ॥६०५॥
सांगूं किती ऐसा। जयाचा आचार। जाण तो साचार। गुणातीत ॥६०६॥
कैसें त्रिगुणासी। जावें ओलांडून। ऐक तें सांगेन। देव म्हणे ॥६०७॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

तरी [४] व्यभिचार। सांडोनि सर्वथा। मातें उपासितां। भक्ति-योगें ॥६०८॥
होती तिन्ही गुण। आपुल्या आधीन। निश्चयें हें जाण। धनंजया ॥६०९॥
कैसी माझी भक्ति। कोण मी अर्जुना। एकनिष्ठपणा। काय कैसा ॥६१०॥
सर्व हि तें सांगूं। करोनि विशद। होय तुज बोध। जेणें योगें ॥६११॥
रत्न आणि तेज। एक चि अभिन्न। तैसें विश्व जाण। माझें रूप ॥६१२॥

---

१ छळला. २ व्यवहार. ३ ह्या जगांत व परलोकांत. ४ एकावरच निष्ठा नसल्याने येणारा चंचलपणा.

किंवा द्रवपण। तें चि जैसें [१]नीर। ना तरी अंबर। आकाश चि ।।६१३।।
गोडी आणि गूळ। अग्नि आणि ज्वाळ। पद्म आणि दळ। एकरूप ।।६१४।।
किंवा शाखा-फल। पुष्पादि सकळ। वृक्ष चि केवळ। होय जैसा ।।६१५।।
मुरालें जें दूध। तें चि दहीं होय। किंवा हिमालय। हिमाचा चि ।।६१६।।
तैसें धनंजया। विश्व येणें नांवें। जाण पां आघवें। मी च आहें ।।६१७।।
काय चंद्रबिंब। सोलोनि पहावें। तेंव्हा तें दिसावें। ऐसें आहे ? ।।६१८।।
जरी सुवर्णाचे। केले अलंकार। न मोडे साचार। सुवर्णत्व ।।६१९।।
किंवा जरी तूप। [२]थिजोनि राहिलें। [३]घृतत्व लोपलें। तयाचें का ।।६२०।।
काय उकलोन। पहावें वसन। तेव्हां चि दिसोन। येई धागा ।।६२१।।
मृत्तिकेचें रूप। पहावया स्पष्ट। हवा काय घट। फोडावया ।।६२२।।
म्हणोनियां आधीं। विश्वपण जावें। मग मातें घ्यावें। तैसा नोहें ।।६२३।।
विश्वाहि सकट। सर्व कांहीं मी च। मजविण साच। दुजें नाहीं ।।६२४।।
ऐशापरी मज। जाणणें किरीटी। तीच जाण भक्ति। एकनिष्ठ ।।६२५।।
विश्वांत माझ्यांत। दिसे भेद जरी। तरी व्यभिचारी। भक्ति ती च ।।६२६।।
ह्या चि लागीं सर्व। सांडोनियां भेद। जाण तूं अभेद-। चित्तें मज ।।६२७।।
ऐक धनंजया। आतां मजहून। नको मानूं भिन्न। आपणासी ।।६२८।।
सुवर्णाची [४]टीक। लागली सोन्यासी। आपणा-देवासी। तैसें ऐक्य ।।६२९।।
सूर्या चि पासोन। होवोनि उत्पन्न। सूर्याचा किरण। सूर्यरूप ।।६३०।।
तैसा देवाचा तूं। देवरूप भक्त। आपणा विभक्त। नको मानूं ।।६३१।।
परमाणु जैसा। भूमीसी अभिन्न। किंवा हिमकण। [५]हिमाचळीं ।।६३२।।
तैसें मजमाजीं। आपुलें मीपण। मद्रूप होवोन। न्याहाळीं तूं ।।६३३।।
ना तरी तरंग। असो का लहान। परी सिंधूहून। नाहीं भिन्न ।।६३४।।
तैसा देवाहून। नोहें कदा भिन्न। देव चि होवोन। राहिलों मी ।।६३५।।
ऐसा एकभावें। दृष्टीचा [६]उल्हास। भक्ति हें तयास। नांव देऊं ।।६३६।।
ज्ञानाचें साचार। [७]रहस्य हें थोर। हें चि सर्व [७]सार। योगाचें हि ।।६३७।।

---

१ पाणी. २ गोठून. ३ तूपपणा. ४ टिकली. ५ हिमालयाच्या ठिकाणी. ६ आनंद; संपन्नता. ७ मर्म.

पाहें धनंजया। सिंधु-जळधरा-। माजीं जैसी धारा। अखंडित ॥६३८॥
सर्वदा सर्वत्र। तैसी त्याची वृत्ति। आदि-मध्य-अंतीं। ब्रह्मरूप ॥६३९॥
[1] कूपाचिया तोंडीं। असे जें [2] गगन। महाकाशाहून। भिन्न का तें? ॥६४०॥
तैसा मजहून। भक्त नाहीं भिन्न। दोघां एकपण। [3] ठायींचें चि ॥६४१॥
[4] सूर्यबिंबावेरीं। एक चि ती प्रभा। जैसी प्रतिबिंबा-। पासोनियां ॥६४२॥
तैसा सोऽहंभाव। धनंजया पाहीं। भक्ताचिया ठायीं। अखंडित ॥६४३॥
सोऽहंभावें वृत्ति। होतां तदाकार। मावळे साचार। सोऽहं तें हि ॥६४४॥
[5] सैंधवाचा कण। सिंधूमाजीं विरे। विरवणें नुरे। मग जैसें ॥६४५॥
ना तरी संपूर्ण। जाळोनियां तृण। अग्नि हि आपण। विझे जैसा ॥६४६॥
तैसा भेदभाव। लयासी नेवोन। ज्ञान हि जिरोन। जाय पार्था ॥६४७॥
मी तों पलीकडे। अलीकडे भक्त। उरे चि ना द्वैत। ऐसें कांहीं ॥६४८॥
देव-भक्तांचें जें। अनादि एकत्व। तें चि शुद्धसत्त्व। प्रकटे गा ॥६४९॥
काय सांगूं पडे। एकत्वा हि मिठी। सर्व हि [6] खुंटती। बोल जेथें ॥६५०॥
तेथें गुणातीत। जिंकितो त्रिगुण। उरेल कोठून। ऐसी भाषा? ॥६५१॥
तुज मर्मज्ञातें। काय सांगूं फार। ब्रह्मत्व साचार। ऐसें जें का ॥६५२॥
तें तो पावे भक्त। उपासी जो मातें। ऐशापरी येथें। एकभावें ॥६५३॥
एकनिष्ठ साची। ऐशी भक्ति ज्याची। पतिव्रता त्याची। ब्रह्मता ही ॥६५४॥
पाहें धनंजया। गंगेचिया ओघें। वाहत जें निघे। खळखळां ॥६५५॥
तया पाणियासी। सागराचें स्थान। निश्चयेंकरोन। मिळे जैसें ॥६५६॥
तैसा ज्ञानदृष्टी। सेवी मातें पार्था। ब्रह्मत्वाचा माथा। भूषवी तो ॥६५७॥
ह्या चि ब्रह्मत्वासी। नांव सायुज्यता। पुरुषार्थ चौथा। हा चि जाण ॥६५८॥
मानिसील जरी। माझें आराधन। होतसे [7] सोपान। पर-ब्रह्मीं ॥६५९॥
म्हणोनि साधन। मी तों ब्रह्मत्वाचें। नको कल्पूं साचें। ऐसें पार्था ॥६६०॥
मी च मूर्तिमंत। पर-ब्रह्म जाण। ब्रह्म मजविण। दुजें नाहीं ॥६६१॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च।

---

१ विहिरीच्या. २ पोकळी; आकाश. ३ मूळचेंच. ४ सूर्यबिंबापर्यंत. ५ मिठाचा. ६ संपतात. ७ जिना.

शाश्तस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।२७।।

इति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे

गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

ब्रह्म ऐसें नांव। जयालागीं देती। माझी च ती [1] मूर्ति। यथार्थत्वें ।।६६२।।
मी च गा शाश्वत। अमृत अव्यय। [2] संबोधिला [2] जाय। ऐशा शब्दीं ।।६६३।।
पाहें चंद्र आणि। चंद्राचें मंडल। एक चि केवळ। होय जैसें ।।६३४।।
तैसें मजहून। ब्रह्म नाहीं भिन्न। मी च परिपूर्ण। ब्रह्मरूप ।।६६५।।
नित्य जें [3] निष्कंप। पार्था धर्मरूप। सुख जें [4] अमूप। अद्वितीय ।।६६६।।
आघवें अज्ञान। नाहींसें करोन। ज्ञान तें हि लीन। होय जेथें ।।६६७।।
सर्व सिद्धान्तांचा। असे जो शेवट। तें चि मी प्रकट। परब्रह्म ।।६६८।।
अहो अवधारा। भक्तांचा सोयरा। ऐसें धनुर्धरा। सांगतसे ।।६६९।।
तंव धृतराष्ट्र। संजयालागोनि। म्हणे तुज कोणी। पुसिलें हें ।।६७०।।
झडकरीं माझी। दूर करीं चिंता। सांगोनियां वार्ता। विजयाची ।।६७१।।
कुरुश्रेष्ठाचे हे। ऐकोनि उद्‌गार। खेद झाला फार। संजयासी ।।६७२।।
मनीं म्हणे ह्याची। कैसी माया वेडी। परमार्थी गोडी। नाहीं ह्यासी ।।६७३।।
करी पुत्रस्नेहें। देवाशीं हि वैर। नवल हें थोर। वाटे मज ।।६७४।।
तरी अपराध। घालोनि पोटांत। देव कृपावंत। तुष्ट होवो ।।६७५।।
[5] घोटो विवेकाची। औषधी ही चांग। मोह-महारोग। फिटो ह्याचा ।।६७६।।
संजयासी ऐसें। घडतां चिंतन। होतां आठवण। संवादाची ।।६७७।।
तयाचिया चित्तीं। तेणें महापूर। उसळला थोर। आनंदाचा ।।६७८।।
म्हणोनि तो आतां। उत्साहें वर्णील। कृपाळु गोपाळ। बोलिला जें ।।६७९।।
ऐका निरूपीन। तयांतील भाव। म्हणे ज्ञानदेव। निवृत्तीचा ।।६८०।।

इति श्री स्वामी स्वरूपानंदविरचित श्रीमत् अभंग-ज्ञानेश्वरी

चतुर्दशोऽध्यायः। हरये नमः हरये नमः हरये नमः।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

---

१ मूळरूप. २ म्हटला जातो. ३ न चळणारें. ४ अत्यंत मोठे. ५ घेतली जावो;घशाखालीं उतरो.